Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Vol. 9, Issue 2 | November 2021 - April 2022 | pp. 122-126

भारत के मातृसत्तात्मक समाजों का एक ऐतिहासिक अवलोकन

स्वाति अग्रवाल

शोधार्थी, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

भारत में मातृसत्तात्मक समाज का अस्तित्व प्राचीन काल से विद्यमान है। प्रागैतिहासिक कालीन प्राप्त मातृदेवी की प्रतिमा इस बात की पुष्टि करती है कि उस समय मातृसत्तात्मक समाज रहा होगा। इसी प्रकार की मूर्तियाँ सिन्धुघाटी से भी प्राप्त होती है। ऋग्वैदिक कालीन समाज में स्त्रियों की सम्मान जनक स्थिति थी, हालांकि उत्तरवैदिक युगीन समाज में नियमों की कठोरता व्याप्त हो गई, किन्तु स्त्रियाँ सम्मानजनक अवस्था में थी। मौर्यकालीन स्त्रियों की सामाजिक अवस्था के बारे में कौटिल्य ने प्रकाश डाला है जिसमें स्त्रियों को पुरुष के समान बताया है। तदनन्तर मौर्योत्तर काल में स्त्रियों के अधिकार सीमित थे यद्यपि स्त्रियों के संरक्षिका के रूप में शासन करने के विवरण प्राप्त होते हैं। किन्तु मध्यकाल में स्त्रियों की स्थिति अत्यंत निराशाजनक अवस्था में पहुँच गई तथा आधुनिक काल आते-आते अनेक कुरीतियाँ व्याप्त हो गई। इन सब के बावजूद आज भी भारत में अनेक ऐसे जनजातीय समाज हैं जिनमें स्त्रियों का स्थान समाज में सर्वोपरि है तथा मातृसत्तात्मक व्यवस्था पाई जाती है।

संकेताक्षर— *मातृसत्तात्मक, मातृवंशीय, जनजाति, परम्परा, पितृसत्ता*

प्रस्तावना

मातृसत्तात्मक शब्द की व्याख्या विभिन्न विद्वानों द्वारा विभिन्न तरीकों से की गई है। मातृसत्तात्मक समाज का तात्पर्य एक ऐसे समाज से है, जहाँ शक्ति परिवार की महिलाओं में निहित रहती है और आगे शक्ति का हस्तान्तरण परिवार की महिला सदस्यों को किया जाता है। व्यक्तिगत स्तर पर भी और सामाजिक स्तर पर भी मातृसत्तात्मक समाज में शक्ति प्राथमिक रूप से महिलाओं के पास होती है। रोजगार में, निर्णय निर्माण प्रक्रिया में और सम्पत्ति पर नियन्त्रण के क्षेत्रों में महिलाएँ प्रभावी होती हैं।

भारत में मातृवंशीय समाज अनादि काल से अस्तित्व में है। प्रागैतिहासिक युग में स्त्री एवं पुरुष की समान साझेदारी थी।[1] पुरुष और स्त्री शिकार करके उसे स्वयं पका कर खाते थे। नारी की प्रजनन क्षमता के कारण उसे सृजनात्मक शक्ति का द्योतक माना जाता था। इस काल की एक नारी प्रतिमा, जो कि उ. प्र. के बेलन घाटी में इलाहाबाद स्थित लोहदानाला[2] से प्राप्त हुई है, सृजनात्मक शक्ति मातृ देवी के समान ही प्रतीत होती है।

भारत की प्राचीनतम संस्कृति सिन्धु घाटी की संस्कृति मानी जाती है। सैंधव सभ्यता से बहुसंख्यक मिट्टी की नारी प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं।[3] इन मूर्तियों से ऐसा प्रतीत होता है कि ये मूर्तियाँ मातृदेवी की होगी तथा इनका उन्नत वक्ष एवं उदर नारी की सृजनात्मक शक्ति का द्योतक प्रतीत होता है। मातृदेवी की प्रसन्नता के लिए प्रतिमा पूजन का विधान प्रचलित होगा इसी कारण यह प्रत्येक घर से प्राप्त हुई है। इस प्रकार सैंधव सभ्यता के उत्खनन से असंख्य नारी मूर्तियों के मिलने से यह प्रमाणित हो जाता है कि इस युग में स्त्रियों की स्थिति एवं उनके अधिकार अच्छी अवस्था में थे। सैन्धव-सभ्यता एक मातृ-सत्तात्मक समाज रहा होगा इसी कारण मातृ देवी की उपासना मुख्य रूप से मिलती है।

तदनन्तर ऋग्वैदिक कालीन ग्रन्थों[4] का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि स्त्रियों के अधिकांश वैधानिक अधिकारों

का उदय वैदिक काल में हो चुका था। परिवार में उनका सम्मानजनक स्थान था। उन्हें सार्वजनिक सभाओं में वाद-विवाद करने का भी पूर्ण अधिकार था तथा वे इन सभाओं में अध्यक्षता का कार्य भी करती थी। ऋग्वेद में लोपामुद्रा, विश्वारा, सिकता, निवावरी, अपाला और घोषा नामक विदुषी स्त्रियों का नाम आदर के साथ लिया गया है। ऋग्वेद में स्त्रीधन के सम्बन्ध में उल्लेखित है कि माता-पिता से दहेज में प्राप्त स्त्रीधन पर उसका पूर्ण अधिकार था।

उत्तरवैदिक काल में समाज जटिलता की ओर अग्रसर हुआ। इस युग में स्त्रियाँ अपने अधिकारों के प्रति सचेष्ट एवं जागरूक थी और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वे अपने पतियों के साथ दायित्वों का निर्वाह करती थी। ऐतरेय ब्राह्मण में पत्नी को मित्र कहा गया है।[5] शतपथ ब्राह्मण[6] में यह भी कहा गया है कि पत्नी से पति की पूर्णता होती है अर्थात् पत्नी को पति की अर्धांगिनी मानने वाली विचारधारा इस युग में भी विद्यमान थी।[7] परन्तु ब्राह्मण धर्म के उदय एवं उसकी जटिलताओं के कारण हिन्दू धर्म में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ भी आयी जिससे स्त्रियों के कतिपय अधिकार प्रतिबन्धित हुए। इसका मुख्य कारण याज्ञिक विधियों की जटिलता एवं खर्चीलापन होना था।

महाकाव्यकालीन समाज में स्त्रियाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अग्रणी रही है तथा अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुई। इस युग में स्त्रियाँ स्वतंत्रतापूर्वक राजसभा में उपस्थित होकर शासन सम्बन्धी विषयों पर राजा से विचार-विमर्श करती थी। महाभारत से ज्ञात होता है कि युधिष्ठिर द्वारा वैराग्य के निर्णय पर द्रौपदी उन्हें धिक्कारते हुए अपने कर्त्तव्य के लिए प्रेरित करती है।[8] इस काल में भी माता की महता बनी रही तथा उसे गुरु से भी ऊँचा स्थान दिया गया था।[9] महाभारत में वर्णन आया है कि रणक्षेत्र से भाग जाने वाले अपने पुत्र संजय का उसकी माता विदुला ने ही दिशा-निर्देशन किया था।

मौर्य काल में कौटिल्य ने स्त्रियों को आदरणीय माना है तथा उन्हें समस्त प्रकार के अधिकारों से युक्त बताया है। उनकी शिक्षा-दीक्षा का विकास इस युग में भी होता रहा, जिनमें धर्म और दर्शन की शिक्षा के साथ-साथ अस्त्र शस्त्र की शिक्षा भी शामिल थी।[10] कन्याएँ अपना वर चुनने के लिए भी स्वतंत्र थी। पति एवं पत्नी की स्थिति भी इस युग में समान होती थी। इस तथ्य की पुष्टि करते हुए यूनानी विद्वान् मेगस्थनीज का कथन है कि पुरुष कुछ स्त्रियों से इसलिए विवाह करते थे कि वे उनकी सहायक बन सके। कौटिल्य ने पति के जीवित रहने पर अथवा मृत्यु के उपरान्त दोनों अवस्थाओं में स्त्री को पुनर्विवाह का अधिकार प्रदान किया है।

मौर्योत्तर काल में स्त्रियों के अधिकार बहुत विकसित नहीं हो सके, क्योंकि इस युग के समाज में धार्मिक एवं राजनैतिक उथल-पुथल का वातावरण था। तथापि सातवाहन वंशीय रानियों में नागनिका ने सातवाहन साम्राज्य की संरक्षिका के रूप में शासन की बागडोर भी सम्भाली थी। सातवाहन वंशीय रानी नागनिका ने अपने पति सातकर्णि प्रथम की मृत्यु के पश्चात् अपने अल्पायु पुत्रों वेदश्री और शक्तिश्री की संरक्षिका के रूप में सातवाहन सत्ता को सम्भाला था। नासिक गुफा अभिलेख में गौतमी बलश्री के राजकीय महत्त्व की चर्चा की गई।[11] रानी गौतमी बलश्री ने अपने पति शिवस्वाति की मृत्यु के बाद अपने पुत्र गौतमी पुत्र सातकर्णि की संरक्षिका बन कर शासन का संचालन किया था। यह भी उल्लिखित है कि गौतमी बलश्री ने त्रिरश्मि पर्वत पर रहने वाले भिक्षुओं को राजकर से मुक्त भू-दान दिया था।[12]

इसी युग में यवन, शक एवं कुषाण आदि विदेशी जातियों का आक्रमण भी हुआ। इन विदेशी आक्रान्ताओं से स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा करने के लिए पर्दा प्रथा का प्रारम्भ हुआ, जिससे उनकी स्वतंत्रता पर तो प्रभाव पड़ा ही साथ ही उनके अधिकार भी सीमित हो गये।

गुप्त युगीन समाज में स्त्रियों को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अपने अधिकारों को विकसित करने का स्वर्णिम अवसर भी प्राप्त हुआ। प्रभावती गुप्त[13] ने संरक्षक के अभाव में वाकाटक साम्राज्य को सम्भाला था तो कुमारदेवी द्वारा चन्द्रगुप्त के साथ सहशासन के उदाहरण[14] भी प्राप्त होते हैं। जिससे यह स्पष्ट होता है कि परिवार में दोनों के अधिकार भी समान थे।

गुप्तोत्तर काल में नारियों की स्थिति एवं अधिकारों में गिरावट आने लगी थी। तत्कालीन परिवार में पुरुष की प्रधानता होने से इस काल में जहाँ एक ओर पुत्र का महत्त्व बढ़ गया था वहीं पुत्री का जन्म दुःख का कारण समझा जाने लगा। इससे मुक्ति पाने के लिए उसका विवाह बाल्यावस्था में ही किया जाने लगा। मेधातिथि[15] के अनुसार कन्याओं का विवाह यौवनारम्भ से पूर्व किया जाना चाहिए। नियोग एवं पुनर्विवाह जैसे अधिकारों के सम्बन्ध में स्त्रियाँ अब स्वतंत्र

नहीं रह गयी थी, उनके लिए यह ज्यादा उचित समझा जाता था कि पति की मृत्यु के पश्चात वे भी पति की चिता के साथ सती हो जाए। विदेशी यात्री अलबरुनी[16] ने लिखा है कि इस युग में राजपरिवार की स्त्रियों को सती होने के लिए बाध्य किया जाता था।

तुर्कों के आने से स्त्रियों की दशा पूर्णत: निराशाजनक हो गयी थी। इस समय सुल्तान की माता का बहुत आदर होता था उसके बाद उसकी मुख्य पत्नी का स्थान था। इल्तुतमिश की पत्नी शाह तुर्कान, सल्तनत काल की प्रथम स्त्री थी, जिसने राजनीति में भाग लिया। रजिया का सिंहासनारोहण दिल्ली सल्तनत के राजनीतिक इतिहास में बहुत महत्त्व रखता है। प्रथम बार केवल योग्यता के आधार पर एक स्त्री के गद्दी प्राप्त करने के अधिकार को सम्मान प्रदान किया गया। लेकिन फिरोज तुगलक एवं सिकंदर लोदी ने स्त्रियों की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगा दिया। इससे यह स्पष्ट है कि साधारण वर्ग की स्त्रियों स्थिति सही नहीं थी।[17]

मुसलमानों के आने के बाद जो अनिश्चितता तथा भय का वातावरण फैला उससे साधारण वर्ग की स्त्रियों के स्थान को धक्का पहुँचा। पर्दा और भी कठोरता से किया जाने लगा। मुगलकाल में हिन्दू समाज में स्त्रियों का स्थान सामाजिक परिवर्तन के कारण काफी बदल गया।[18] गृह कार्य ही स्त्रियों का उच्च क्षेत्र रह गया था। मुगल काल के समय बाल विवाह की प्रथा थी।

मुगलकाल के बाद भारत पर ब्रिटिश शासन स्थापित हो गया। इस समय भी बाल विवाह, बहुविवाह, दहेज प्रथा विधवा विवाह निषेध एवं सती प्रथा इत्यादि कुरीतियाँ समाज में और भी अधिक पकड़ बनाए हुई थी। ब्रिटिश शासन को विरासत में सामंतवादी समाज मिला। इस व्यवस्था में महिला भोग की वस्तु समझी गई। उसके जीवन का एकमात्र उद्देश्य पति की सेवा एवं उसके परिवार के एक सदस्यों की सेवा करना था।

औपनिवेशिक स्वतंत्रता के बाद भारत के आधुनिकीकरण ने इस मातृवंशीय समाज की प्रथा को छिन्न—भिन्न कर दिया क्योंकि कई शहर और राज्य भारतीय राष्ट्र में मिला दिए गए थे। यद्यपि कई जनजातियों ने इस मातृवंशीय सामाजिक संरचना को वर्तमान में भी अपनाया हुआ है जबकि अन्य सभी हमारे देश के पितृसत्तात्मक समाज के अन्तर्गत समाहित हो गए है।[19]

वर्तमान में भारत में मेघालय, केरल, कर्नाटक और लक्षद्वीप ही ऐसे राज्य है जहाँ की विभिन्न जनजातियों ने अपने परिवारों में मातृवंशीयता के अस्तित्व को आज भी समेटा हुआ है। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण जनजातियाँ हैं—खासी, गारो, नायर और एझवा। हालांकि मातृवंशीय परिवार केरल और कर्नाटक में पितृसत्तात्मक नियंत्रण के लिए शहरीकरण करने का प्रयास किया जा रहा है। फिर भी उत्तर-पूर्वी राज्यों ने राष्ट्र के पक्ष में अपनी सदियों पुरानी परम्पराओं को छोड़ने से इनकार कर दिया है।

मातृसत्ता की अवधारणा को उन जनजातियों के उदाहरणों से समझना होगा जो इस अवधारणा को आज भी अपने अन्दर समेटे हुए भारत के विभिन्न भागों में निवास करतीं हैं—

1. मेघालय की खासी व गारो जनजातियाँ—खासी जनजाति को भारत में मातृवंशीय समाजों में से एक के रूप में जाना जाता है। खासी उत्तर-पूर्वी भारत में मेघालय राज्य में रहने वाले लोगों का एक समूह है। विद्वानों ने खासी समाज को मातृवंश (मैट्रीलीनी) के रूप में वर्गीकृत किया, न की मातृसत्ता (मैट्रीयार्की) रूप में। खासी जनजाति में परिवार की सबसे बड़ी महिला मुखिया के रूप में कार्य करती है जबकि सबसे छोटी बेटी को संपत्ति विरासत में मिलती है और अपने परिवार के साथ रहने का अधिकार भी मिलता है।[20]

खासी समाज में लड़की का जन्म होने पर उत्सव मनाया जाता है। जिस परिवार में बेटी का जन्म नहीं होता है, वहाँ परिवार एक बेटी गोद लेता है। सबसे बड़ी महिला का भाई परिवार को चलाने में उसकी मदद करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उसके परामर्श के बिना कभी भी कोई निर्णय नहीं लिया जाता है। इसके अलावा जब कोई पुरुष शादी करता है तो वह अपनी पत्नी के घर चला जाता है,और वहाँ अपने ससुराल वालों के साथ रहता है। सबसे छोटी बेटी को 'खद्दू' कहा जाता है। खद्दु को पारिवारिक संपत्ति का सबसे का बड़ा हिस्सा मिलता है क्योंकि वह सभी पारिवारिक समारोहों को आयोजित करती है और परिवार के पूर्वजों को प्रसन्न रखती है। साथ ही वह जीवनभर बूढे माता-पिता या दादा-दादी की देखभाल करती है।[21] हालांकि अन्य बेटियों को भी अपनी मां की संपत्ति में हिस्सा मिलता है, लेकिन खद्दू को सबसे अधिक मिलता है। चूंकि सबसे छोटी बहन

कबीले की संरक्षक है अत: वह अपने परिवार के सदस्यों के अन्तिम संस्कार और दफन के लिए जिम्मेदार हैं।

मेघालय में खासी के बाद गारो दूसरी बड़ी जनजाति है जो मातृवंशीय समाज को अपनाते हैं। गारो जनजाति में भी सम्पत्ति का स्वामित्व महिलाओं के पास होता है। पुरुष, सामाजिक और घरेलू मामलों को सम्भालते हैं और संपत्ति का प्रबंधन करते हैं। व्यक्ति अपनी माता से अपने कबीले की उपाधि लेते हैं। परम्परागत रूप से खासी जनजाति की तरह, गारो जन जाति के भी सबसे छोटी बेटी को अपनी मां से संपत्ति विरासत में मिलती है। पति शादी के बाद अपनी पत्नी के घर रहता है। परिवार को 'माचोंग' कहा जाता है। एक आदमी अपनी पत्नी के माचोंग में रहने के लिए शादी के बाद अपना माचोंग छोड़ देता है। वह अपनी पत्नी के माचोंग का सदस्य बन जाता है और उसके कबीले का नाम अपना लेता है।

इस तरह अपनी बहन खासी की तरह, गारो भी सबसे बड़ी मातृवंशीय विरासत का पालन करती है। इन दो जनजातियों ने वर्तमान में एक मातृवंशीय समाज को बनाए रखा है लेकिन कहीं-कहीं पितृसत्ता का अस्तित्व भी दिखाई देने लगता है क्योंकि परिवार में भाई, की भूमिका भी मुख्यत: दिखाई देती है।

2. केरल की नायर और एझवा जनजातियाँ—केरल के राज्य बनने से पहले से ही नायर भारत के मातृवंशीय समाजों में से एक है। पिछली शताब्दियों में, केरल की मातृवंशीय व्यवस्था व्यापक रूप से न केवल हिन्दुओं के बीच देखी गई बल्कि कुछ मुस्लिम और ईसाई समुदायों में भी देखी गई है। कहा जाता है कि आधी से अधिक आबादी ने 200 साल पहले विरासत की इस प्रणाली का पालन किया था। हालांकि 19वीं सदी के बाद यह प्रथा काफी हद तक फीकी पड़ गई। वर्तमान में गोपीनाथन, केरल राज्य के उन परिवारों में से एक है जो अभी भी इस प्रणाली का पालन करते हैं। धारवाड (जातियों और उपजातियों का समूह) मातृवंशीय परिवार में एक वृद्ध महिला के अधीन रहता है। सामान्य संपत्ति के साथ-साथ अन्य निर्णयों की देखभाल करने की जिम्मेदारी सबसे बड़े पुरुष सदस्य ''कर्णवन'' की होती है। 19 वीं शताब्दी के अन्त में, ब्रिटिश शासन के बढ़ने के साथ इस मातृवंशीय प्रणाली का पतन हुआ। इस व्यवस्था के पतन के सम्बन्ध में गोपीनाथन ने कहा, 'महिलाओं को लगा कि कर्णवर परिवार के पुरुष मुखिया, ने अपनी शक्ति का दुरुपयोग किया। दूसरा कारण यह था कि परिवार के पुरुष सदस्य अपने बच्चों के लिए अधिकार चाहते थे।'

एझवा भी मातृवंशीय समाजों में से एक केरल का ही समुदाय है। उत्तरी मालाबार के मातृवंशीय समुदायों में पितृस्थानीय (पैट्रीओकल) व्यवस्था है, जबकि उत्तरी त्रावणकोर में मातृस्थानीय (मैट्रीओकल) पद्धति का पालन किया जाता हैं। इन समुदायों में भी, कर्णवन को निर्णय लेने का नियंत्रण दिया गया है जबकि वहाँ मातृवंशीय रीति-रिवाजों को महत्त्व दिया जाता है। चूंकि भारतीय राष्ट्र का गठन हुआ था और केरल एक राज्य के रूप में कार्य करना शुरू कर दिया था। इसके साथ-साथ इन समुदायों को दबा दिया गया है। इसलिए इन समुदायों को राष्ट्र की प्रथाओं के साथ स्वयं को परिवर्तित करना पड़ा। वर्तमान में एझवा व नायर अब भारत में मातृवंशीय समुदाय में शामिल नहीं हैं।

3. कर्नाटक के बंट एवं बिलवा समुदाय—कर्नाटक में तुलवा जातीय समूह के दो प्रमुख समुदाय अर्थात् बंट समुदाय और बिलवा समुदाय[22] मातृवंशीय समाज के नियमों का पालन करते हैं। बंट और बिलवा समुदायों में विरासत परिवार की सबसे बड़ी महिला सदस्य को मिलती है। इसके अलावा बहन का भाई परिवार और उसके सदस्यों का प्राथमिक निर्णय लेने वाला होता है।

4. लक्षद्वीप—लक्षद्वीप में इस्लामी समाज को शेष भारत से जो वास्तव में अलग करता है—वह है वहाँ मौजूद मातृत्व की लंबी परम्परा, जिसमे वंश और संपत्ति मां से बेटी तक हस्तांतरित होती है। ये मातृवंशीय मुसलमान केरल के हिन्दू प्रवासियों के वंशज है बाद में वे इस्लाम में परिवर्तित हो गए थे।

इन सभी मातृसत्तात्मक जनजातियों में कई समानताएँ होने के साथ ही कई विषमताएँ भी दिखाई देती हैं। जैसे कि मेघालय की खासी व गारो जनजातियों में परिवार की सबसे छोटी बेटी को उत्तराधिकार प्राप्त होता है, वहीं कर्नाटक के बंट व बिलवा समुदायों में उत्तराधिकार परिवार की सबसे बड़ी बेटी को प्राप्त होता है। इसके अलावा यह भी देखा गया कि सभी जनजातियों में बहन का भाई उसको प्रशासन में मदद करता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि सभी जनजातियों में भाई

के प्रशासन सम्बन्धी अधिकार सीमित थे ,लेकिन कालांतर में कर्नाटक व केरल में भाइयों का प्रशासन में हस्तक्षेप बढ़ गया। उन्होंने अपनी ही सन्तानों को वारिस बनाना प्रारम्भ कर दिया और मातृसत्तात्मक समाज का धीरे-धीरे अन्त हो गया। किन्तु आज भी मेघालय की खासी व गारो जनजातियों में मातृत्व सत्ता का अस्तित्व विद्यमान है।

निष्कर्ष

भारत में प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक के इतिहास में मातृसत्तात्मकता के अस्तित्व का अध्ययन करने पर यह विचार सामने आया है कि भारत में मातृसत्तात्मकता का प्रमाण हमें प्राचीन समय से ही प्राप्त हो जाता है जो की वर्तमान में भारत के कुछ ही भागों की जनजातियों तक ही सीमित होकर रह गयी है।

भारत के इन क्षेत्रों में विद्यमान मातृसत्तात्मक समाजों के बीच में पाई जाने वाली भिन्नता को आधार बनाकर इन समाजों का वर्गीकरण करते हुए, और अध्ययन किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त समाजों में मातृसत्तात्मकता से पितृसत्तात्मक की ओर संक्रमण व इस प्रकार के परिवर्तनों के कारणों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना आगामी शोध के विषय हो सकते हैं।

सन्दर्भ सूची

1. बाचोफेन, जे.जे., मिथक, धर्म और मातृ अधिकार, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, पुनर्मुद्रण, न्यू जर्सी, 1973
2. सांकलिया, एच.डी., प्री हिस्टोरिक आर्ट इन इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाउस, न्यू डेली, 1978, पृ.सं. 8
3. मार्शल, सर जान, मोहनजोदारो एवं इंडस सिविलाइजेशन, भाग 1, ज्ञान पब्लिकेशन हाउस, ग्रेट रसेल स्ट्रीट, लंडन, 1931, पृ.सं. 115
4. ऋग्वेद, 1/66/3, 1/124/4/, 3/53/4
5. ऐतरेय ब्राह्मण, 7/3/13
6. शतपथ ब्राह्मण, 5/2/1/10
7. तैतिरीय ब्राह्मण, 3/4/5
8. महाभारत शान्ति पर्व, 14/6-37
9. उपरीवृत, आदि पुराण, 1/196/16, ''गुरुणां चौव सर्वेषां माता परमको गुरुः।''
10. मैकक्रिण्डल, एशियन्ट इंडिया एज डिसक्राइब्ड क्लासिकल लिटरेचर, आर्चिबाल्ड कांस्ताब्ले एँड को. लिमिटेड, मेस्तमिनिस्टर, 1979, पृ.सं. 202
11. नासिक गुफा अभिलेख, क्र. 3, वासिष्ठ पुत्र पुलुमावि के राज्य संवत्सर 19 का अभि., पृ.सं. 4
12. नासिक गुफा अभिलेख, क्र. 3, गौतमीपुत्रसात्कार्नी, राज्य संवत्सर 24, पृ.सं. 4-5
13. पूना ताम्रपत्र अभिलेख, पृ.सं. 14
14. अल्तेकर, ए.एस., द पोजीशन ऑफ वीमेन, द कल्चर पब्लिकेशन हाउस, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी,1938 पृ.सं. 186, दि क्वायनेज ऑफ दि गुप्त एम्पायर, न्युमिस्मेटिक सोसाइटी ऑफ इंडिया, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी ,1957, पृ.सं. 2
15. मेघातिथि, टी. मनु, 8-366
16. सचाऊ, अल्बरूनीज इंडिया, केगन पॉल ट्रेंच, त्रुबनेर एँड को. लिमिटेड, द्रायदेन हाउस,गेर्राडस्ट्रीट, लंडन, 1910 अं. 69 पृ. 155, अं. 71, पृ.सं. 162
17. श्रीवास्तव, ए.एल., मेडिवल इंडिया कल्चर, शिव लाल अग्रवाल एँड को. लिमिटेड, जयपुर, आगरा, इंदौर, 1964, पृ.सं. 23
18. त्रिपाठी, आर.पी., सम आस्पेक्ट ऑफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन, द इण्डियन प्रेस लिमिटेड, इलाहबाद,1936, पृ.सं. 109
19. प्रभा आप्टे, भारतीय समाज में नारी, क्लासिक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 1996, पृ.सं. 1
20. बरूआ, डॉ. जेयूटी, 2007. मेघालय की खासी के प्रथागत कानून,, लॉ रिसर्च इंस्टीट्यूट, गुवाहाटी, पृ.सं. 81
21. मावरी, एच.ओ. खासी मिलियू, अवधारणा प्रकाशन कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड; नई दिल्ली, 1981,पुनर्मुद्रण 2010, पृ.सं. 69,42
22. कर्नाटक शिलालेख, खंड 3 : भाग 1; संख्या 13.4., एपिग्राफिया कर्नाटक, वॉल्यूम आठवीं (पुराना संस्करण)